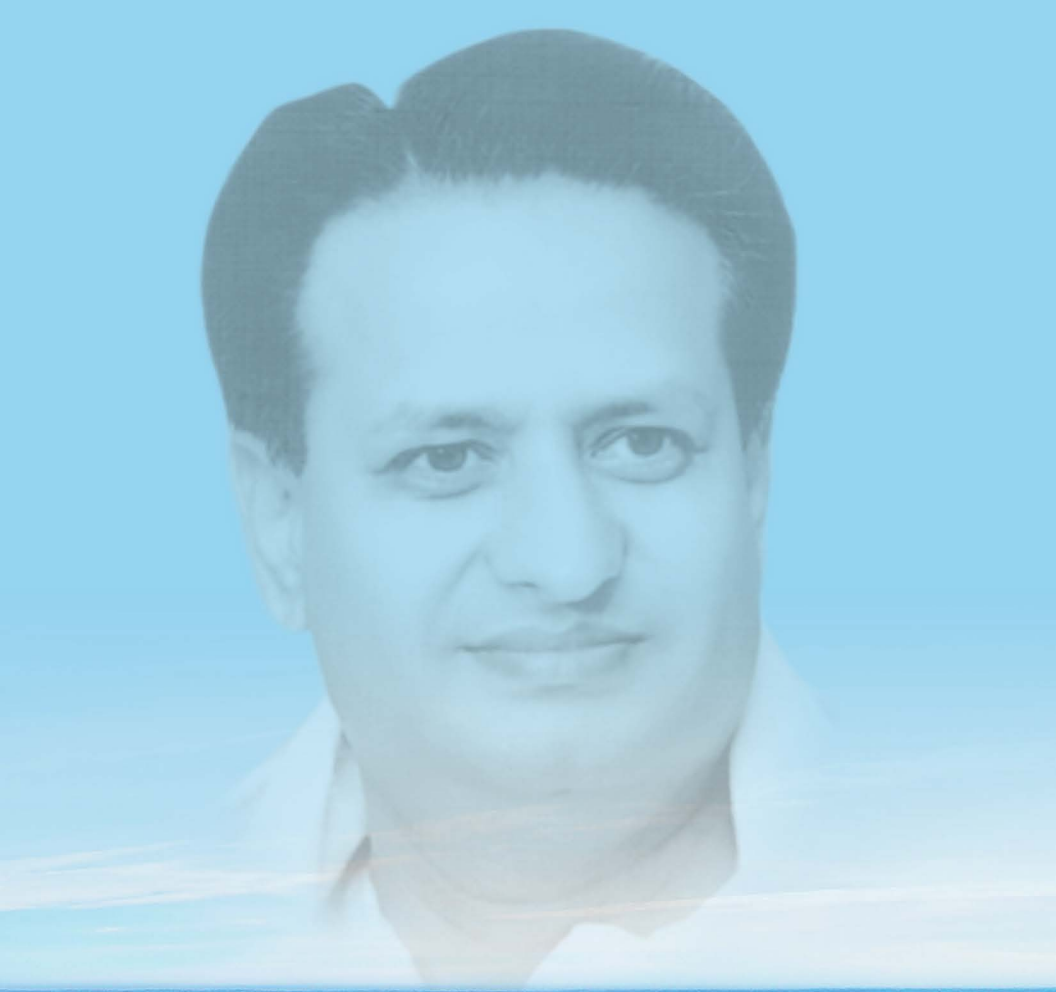

समुन्दर मेरा नाम

शेषेन्द्र शर्मा

समुंदर मेरा नाम

समुद्र को तू कितना जानता है? समुद्र लहरों का समूह नहीं---- अरे ! दिशान्तों तक व्याप्त इस विशाल असहायतावलय में कौन-सा समुद्र है और कौन समुद्र के तट पर है, तू क्या जानता है?

तू मस्ती में इटलाती तैरती बढ़नेवाली नाव है, लहरियों के कंधों से ढ़ोई जानेवाली पालकी है – भयंकर संदर्भों से लड़ाइयाँ, जीवन-मरणों को तराजू में तोलकर रखनेवाली हारें, प्रिय वस्तुओं की प्राप्ति के लिए बिताये गये युगों से तुल्य क्षणों से भरे बीभत्स उत्सवों में तूने कब भाग लिया है? केवल एक ही घड़ी के लिए खिलकर रंगों की हवाओं को बहलानेवाले फूल की आत्मा को तूने कब प्रत्यक्ष कर लिया है?

समुद्र एक मार्मिक द्रव्य है। तू कब जाने समुद्र की गहराइयाँ? समुद्र की सिराओं में कितनी पर्वत श्रेणियाँ हैं और उसकी आँतड़ियों में कितनी सभ्यताएँ जीर्ण हो गयी हैं तू क्या जानता है? समुद्र के रक्त-प्रवाहों में कितने युगों की, कितने मन्वंतरों की आग छिपी हुई है, तुझे कैसे मालूम होगा? कितनी वेदनाएँ और कितनी आत्माओं की साहस पूर्ण यात्राएँ उसके अन्तरों में घुर घुर ध्वनियाँ कर रही हैं तू कैसे जान सकता है?

कल समुद्र अश्व गति से दौड़ रहा था। हर तरंग एक प्रतीक और एक अंलकार था - आज वही समुद्र फूटकर टूट पड़नेवाले उत्तुंग तरंग, श्वेत निराश सदृश फेनिल समूह, तटों से टकराकर मूक हुए शंख, तितर-बितर सीप, हमेशा हमेशा के लिए पानी को खोयी भग्न नौकाएँ--

-समस्त मेरे कंठ-पृष्टों में समाहित---एक मानव अवयवों की शिथिल राजधानी !

मेरे कंठ में एक चिल्लाहट है; चिल्लाहट में एक प्रतिध्वनि है- मेरी चिल्लाहट में समुद्र, पर्वत, जंगल, गाँव सभी चिल्ला रहे हैं- अभिव्यक्ति के लिए, नाम के लिए; अपनी अस्मिता से भिन्न एक अनुभूति के लिए; फिर भी मेरे नाम में नाम पर अनासक्ति है;

मुझ में से काल प्रवाहित हो रहा है- अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा की दिशा में, निश्शब्द की ओर सभी शब्दों को समेटकर जा रहा है।

समुद्र लहरों का समूह नहीं, समुद्र एक भाषा है ! समुंदर मेरा नाम है !

वर्षा ऋतु में बादलों के भार को वहन न कर सकने के कारण हवा की क्राँतियाँ ही तूफानें हैं -- तूफानें विद्रोह की विद्याएँ सिखाती हैं !

निड़र होकर चिल्ला ! अरे, हम तो जीने की इच्छा जब तक रहेगी तब तक ही जियेंगे।

हे जिजीविषा ! कम से कम तू आगे बढ़ ! हे पाल तू टूट जा, हे उत्तंग तरंगें ! उग्र बन ! ---- कुत्तों जैसा मत चल ! ---- हे वायु ! तूफानों को आमंत्रित कर ! हे तट, तू दूर हट जा ! हे नाव, तू फट जा !

समुद्र जहाँ अपने पंजों से आसमानों को घूँसे देते रहते हैं, वहीं मैं पहुँचूँगा; तूफानों से दोस्ती करूँगा ! सिंहों के सौंदर्य की उपासना करूँगा। अपने प्राणों को वहीं फेंक दूँगा।

हवा समुद्र की भूमियों से बादलों को बटोरकर चली जाती है। पर्वत शिखरों पर छोड़ देती है। चिल्लानेवाले जंगलों और उन्मत्त आकाशों की पराकाष्ठाओं पर छोड़ती है, शिशुओं-सा बे-रोक-टोक बिहरने के लिए --- हवा समुद्र के स्वप्नों का राजदूत है। अपने चक्रवात शरीर से सागरोपनिषदों की रचना करती है- हवा समुद्र हृदय का व्याख्याकार है ! जो उसको समझ सकता उसकी संपत्ति है वह हृदय ---
-

मैं कहाँ हूँ? कहाँ ढूँढ़ेगा यह संसार मुझे ! सब नशों को छोड़कर मैं अब किस नशे में हूँ, यह कैसे समझ पायेगा? जेब में किस प्रकार की यादें ड़ालकर आया हूँ, किसे मालूम है? किन पत्थरों के परिवारों में दिल को दोनों हाथों में रखकर आँसू की बूँदों के लिए भीख माँगता फिरता हूँ, कौन जानता है? --

पीड़ाओं को उँड़ेलकर दिल फिर अपने में व्यथाओं को भर रहा है। मैं अपने से घट कर और में समा जाना चाहता हूँ तो अपने को छोड़कर मुझ में समा जानेवाला कोई दूसरा मिल न पाया।

आज मेरी आत्मा अग्नियों में कूदकर तप्त सुवर्णा हो गयी है ! बदला हुआ आज मेरी शब्द-अनुभूतियों की ताप को उगल रहा है। कौन जानता है कि मैं आज सब को खोकर देश की ओर काल की ओर यात्रा कर रहा हूँ।

यह कौन जानता है कि जीवन तप के शिखरारोहण में मानव हमेशा एकाकी है।

कौन जानता है कि अव्यक्त-वाक् ही उसका क्रास है।

End of Preview.

Rest of the book can be read @

http://kinige.com/book/Samundar+Mera+Naam

* * *